International Journal of Humanities and Social Science Research
ISSN: 2455-2070; Impact Factor: RJIF 5.22
Received: 10-12-2018; Accepted: 15-01-2019
www.socialsciencejournal.in
Volume 5; Issue 1; January 2019; Page No. 74-77

अरविन्द घोष का जीवन कृतित्व का समीक्षात्मक अध्ययन

डॉ0 कृष्ण बहादुर सिंह
पी–एच.डी. (शिक्षा), वरिष्ठ अध्यापक, शासकीय उच्च.माध्यमिक विद्यालय, अमरपुर, जिला उमरिया, मध्यप्रदेश, भरत।

सारांश
प्रस्तुत शोध पत्र अरविन्द घोष का जीवन कृतित्व का समीक्षात्मक अध्ययन पर आधारित है।
महर्षि अरविन्द एक महान आदर्शवादी होते हुए भी यथार्थवादी थे। उनका दर्शन समन्वित रचनात्मक दर्शन एवं सर्वांग योग दर्शन है। उनकी मान्यता है कि जीवन और जगत् दोनों सत्य हैं। जीवन का लक्ष्य सर्वांग जीवन है जिसमें तन, मन और आत्मा सभी का विकास होना चाहिए। वास्तव में यह विकास तभी सम्भव है जब व्यक्ति–आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करे। सर्वांग योग दर्शन यह बताता है कि मानव को योग द्वारा अज्ञान, अन्धकार और मृत्यु से ज्ञान, प्रकाश और अमरत्व की ओर ले जाना चाहिए। इतना ही नहीं महर्षि की यह मान्यता है कि योग आत्म तत्व की अनुभूति कर ब्रह्म में लीन होने की बात नहीं करता है।

मूल शब्द : अरविन्द घोष, कृतित्व, शैक्षिक, शृष्टि।

प्रस्तावना

प्रत्येक व्यक्ति का अपना एक नजरिया होता है कि वह अपना जीवन किस प्रकार से व्यतीत करे। किस प्रकार से, के प्रश्न का उत्तर ही उसके जीवन का आधार होता है। कुछ ऐसे व्यक्तित्व होते हैं जो अपने तक ही सीमित रह जाते हैं और कुछ ऐसे भी होते हैं, जो समाज और राष्ट्र की दिशा का निर्धारण करते हैं। भारतीय व्यक्तित्व में एक ऐसे ही कर्मयोगी और सिद्ध–पुरूष का नाम राष्ट्र के मानस पटल पर आता है, जिसने अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर दार्शनिकों, मनीषियों और सुधी–जनों तथा ज्ञान–पिपासुओं को चिन्तन और मनन करने के लिए बाध्य किया है। वह व्यक्तित्व है– महर्षि अरविन्द।

स्वतंत्रता यज्ञानुष्ठान के प्रमुख पुरोधा, महान् अध्यात्मवादी कर्मयोगी एवं सिद्ध–पुरूष श्री अरविन्द का जन्म कलकत्ता के एक सम्भ्रान्त डॉक्टर परिवार में 15 अगस्त, 1872 ई. को हुआ था। इनके पिता का नाम डॉ. कृष्णधन घोष और माता का नाम श्रीमती स्वर्णलता देवी था। अपने माँ–बाप के तीसरे पुत्र के रूप में अरविन्द घोष ने अपना शैशवकाल 'खुलना' में व्यतीत किया। यदा–कदा अपने माँ के साथ वे इस काल में 'देवधर' भी आया करते थे। पिता ने स्वयं चिकित्सा की शिक्षा इंग्लैण्ड से प्राप्त की थी। अतः उनके ऊपर पाश्चात्य संस्कृति और सभ्यता का गहरा रंग चढ़ा हुआ था। वे चाहते थे कि उनके बच्चे भी विदेशों में ही जाकर शिक्षा ग्रहण करें। यद्यपि माता श्रीमती स्वर्णलता देवी का इसमें विश्वास नहीं था। डॉ. घोष ने अपनी दृढ़ इच्छा को क्रिया रूप प्रदान किया और अरविन्द के प्रारम्भिक शिक्षा की शुरूआत विलायती संस्कृति के विद्यालय 'दार्जिलिंग के कॉन्वेन्ट स्कूल लोरेटो' से किया। इस शिक्षा की शुरूआत उनके पाँच वर्ष की आयु में हुई और केवल दो वर्ष तक ही यहाँ शिक्षा ग्रहण करने के बाद उनके डॉक्टर पिता ने भाइयों के साथ उन्हें इंग्लैण्ड भेज दिया।

लगातार चौदह वर्षों तक अरविन्द घोष ने (1879–1893) इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध विश्वविद्यालयों लन्दन तथा कैम्ब्रिज में अध्ययन किया। इंग्लैण्ड में अध्ययन करते समय उनका दस वर्ष की व्यतीत हुआ था कि कैम्ब्रिज के 'किंग्स' कालेज से उनहें सर्वोच्च छात्रवृत्ति प्राप्त हुई। विलायत में डॉ. घोष ने ड्रेवेट दम्पत्ति को, जिनके संरक्षण में श्रीअरविन्द थे, निर्देश दिया था कि अरविन्द भारतीयों के सम्पर्क में न आने पाये। यहाँ रहकर उन्होंने ग्रीक, लैटिन, जर्मन, स्पेनिस तथा इटैलियन आदि भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया। कैम्ब्रिज में (1890) जाने पर उन्हें थोड़ा–सा संस्कृत और बंगला भी पढ़ने का अवसर मिला। कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से इन्होंने स्नातक (बी.ए.) के समकक्ष 'ट्रिपोज' के प्रथम भाग की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण किया। इसके बाद 1890 में ही इन्होंने आई.सी.एस. (ப்ண்) की परीक्षा ससम्मान पास किया किन्तु अंग्रेजों की दासता में सेवा न करने का संकल्प ले करके इसका बहिष्कार कर दिया। यह प्रबल इच्छा शक्ति, जिसने आई.सी.एस. की सफलता को भी अंगीकार न करने दिया, महर्षि अरविन्द के विषय में यह दर्शाती है कि विदेश–प्रवास काल के समय से ही उनमें राष्ट्र–भक्ति की भावना उठती रही। इस भावना की परिणिति यह हुई कि 1893 ई. में महर्षि अरविन्द स्वदेश भारत लौट आये।

1893 ई. स्वदेश लौटने के बाद महर्षि अरविन्द ने तेरह वर्षों तक बड़ौदा के गायवाड़ की सेवा की। सेवा की यह अवधि 1893 से 1906 तक रही। यहाँ पर प्रारम्भ में वे माल–विभाग में कार्यरत रहे। बाद में वे यहीं एक कालेज में अंग्रेजी के अध्यापक नियुक्त हो गये। कुछ समय के बाद ही वे यहाँ के एक राज्य कालेज में प्राचार्य हो गये। इस काल में इन्होंने भारतीय धर्म, दर्शन, संस्कृति आदि का अध्ययन भी किया। इसी बीच इन्होंने संस्कृत, मराठी, गुजराती तथा बंगला आदि भाषाओं का भी अध्ययन किया। इन विभिन्न भाषाओं के अध्ययन का कारण केवल यह था कि उनकी आसक्ति भारतीय संस्कृति के प्रति रही। डॉ. दीनेन्द्र कुमार के अनुसार– 'सावित्री' रचना का प्रारम्भ भी यहीं से हुआ था। यहीं से महर्षि ने कविताओं की भी रचना प्रारम्भ की थी, जिसका प्रकाशन बाद में पाण्डिचेरी आश्रम से हुआ।

सन् 1901 में महर्षि अरविन्द का पाणिग्रहण संस्कार एक सुशील कल्या मृणालिनी देवी से हुआ। इस सम्बन्ध के पाँच वर्ष बाद ही महर्षि अरविन्द राजनीति–क्षेत्र में प्रवेश किये। पत्नी का इस क्षेत्र से कोई लगाव न होने के कारण महर्षि के सम्बन्धों में खटास आ गया। परिणामतः 1906 ई. में ही इनका पत्नी से सम्बन्ध टूट गया। अब महर्षि अरविन्द के लेख, जो राष्ट्रीय भावनाओं से ओत–प्रोत होते थे, 'युगान्तर' एवं 'वन्देमातरम्' आदि पत्रिकाओं में आने लगे। 1907 ई. इनका एक क्रान्तिकारी लेख आया, जिसके कारण तत्कालीन शासन ने इन्हें जेल के अन्दर भेज दिया। कुछ दिनों के बाद इन्हें रिहा भी कर दिया गया। 1908 में मुजफ्फरपुर में बमकाण्ड हुआ। 04 मई को अरविन्द भी गिरफ्तार करके जेल भेज दिये गये। सन् 1909 में वे ओीपुर जेल से मुक्त कर दिये गये। जेल में ही इन्होंने 'गीता' और 'उपनिषद्' का गहन अध्ययन किया। यहीं पर इन्हें श्रीकृष्ण का साक्षात् दर्शन 'सर्व व्याप्त एवं सर्वमय' रूप में

हुआ। इसका परिणाम यह हुआ कि अब महर्षि का झुकाव राजनीति से अध्यात्म की ओर हो गया। 1909 ई. में 'धर्म' तथा 'कर्मयोगी' नामक पत्रिकाओं के सम्पादन का कार्य इन्होंने प्रारम्भ किया। स्वतंत्र क्रान्तिकारी विचारधारा होने के कारण वे नरम दल के मधुर विचारों से कभी सहमत नहीं थे। उन्होंने 'पूर्ण स्वराज्य' भारत का मन्तव्य माना।

फरवरी 1910 में महर्षि अरविन्द में पुनः अन्तःप्रेरणा जागृत हुई और वे लगभग पैंतालिस दिन के लिए गुप्तवास करने के लिए 'चन्द्र नगर' चले गये। इसके बाद ईश्वर की इच्छा से प्रेरित हो करके वे अपने एक मित्र के साथ प्रथम बार पाण्डिचेरी पहुँचे। यहाँ उन्होंने घोर कष्ट उठाकर 'योग साधना' प्रारम्भ किया। यही वह मार्मिक स्थल है, जहाँ से महर्षि अरविन्द के जीवन का एक नया अध्याय आरम्भ होता है। लगभग चार वर्षों तक कठिन योग साधना के बाद सन् 1940 में एक फ्रांसीसी महिला उनके शिष्य बनकर सेवा करने लगी। उधर उनकी धर्मपत्नी श्रीमती मृणालिनी देवी का 1918 ई. में देहान्त हो गया। 1920 ई. तक फ्रांसीसी महिला ने महर्षि की सेवा की। इसी वर्ष महर्षि अरविन्द ने अपनी शिष्या को 'माता जी' के नाम से स्वीकार किया। अब माता जी आश्रम में ही इन्हीं के साथ रहने लगीं। धीरे–धीरे इन्होंने आश्रम का पूर्ण दायित्व सँभाल लिया। श्री अरविन्द की यौगिक साधना भी चलती रही और उनका सम्पर्क भी देश के क्रान्तिकारी नेताओं से बना रहा। श्री सी.आर. दास ने एक बार पुनः महर्षि अरविन्द को राजनीति में आने के लिए अनुरोध किया, किन्तु उन्होंने इसे अस्वीकार कर दिया।

सन् 1925 में महर्षि अरविन्द ने अपना प्रथम वक्तव्य 'सुपर माइण्ड' के विषय में दिया। 14 नवम्बर, 1926 ई. को इन्होंने आश्रम में विजय दिवस मनाया और इसी तिथि से ये 'सिद्ध योगी' कहे जाने लगे। इसी वर्ष आश्रम का नियमित रूप से शिलान्यास भी हुआ। श्री अरविन्द ने अपने जन–जीवन से पूर्ण अवकाश ले लिया और जीवन का शेष भाग योग की महती साधनाओं में व्यतीत करने का निश्चय किया। योगिराज अरविन्द साधना और लेखन साथ–साथ करते रहे तथा उनके ये विचार 'आर्य पत्रिका' में छपते रहे। 5 दिसम्बर, 1950 ई. को योगिराज की आत्मा सदा–सदा के लिए अपनी पार्थिव काया छोड़कर अनन्त में विलीन हो गयी।

महर्षि अरविन्द के दार्शनिक विचार

महर्षि अरविन्द का जीवन–इतिहास यह बताता है कि जेल के शिकन्जों में रहकर भी उन्होंने गीता, उपनिषद् तथा वेद आदि का गहन अध्ययन किया। उपनिषद् और गीता के अध्ययन का प्रभाव यह रहा है कि महर्षि अरविन्द का दर्शन इसी पर आधारित हो गया। दूसरे शब्दों में, महर्षि अरविन्द ने इनका केवल गहन अध्ययन ही नहीं किया वरन् इनके निहितार्थ को उन्होंने अपने जीवन में उतारकर दूसरों के लिए भी प्रेरणा स्त्रोत बन गये। इस प्रकार महर्षि अरविन्द वर्तमान युग के सर्वोत्कृष्ट साधक एवं भारतीय ऋषि परम्परा की उज्जवल कड़ी हैं। ये उपनिषदों के भाष्यकार नहीं हैं, स्वयं उपनिषदिक सत्य के द्रष्टा हैं। इन्होंने अपने प्रमुख ग्रन्थ 'लाइफ डिवाइन' में सत्य के साक्षात्कार का वर्णन किया है।

ब्रह्म और ईश्वर

ब्रह्म और ईश्वर के विषय में योगिराज की यह मान्यता है कि ये दोनों एक ही हैं। दर्शन की भाषा में जिसे ब्रह्म कहा जाता है, धर्म क्षेत्र में वही ईश्वर के रूप में जाना जाता है। अतः ब्रह्म और ईश्वर एक दूसरे के पर्याय हैं। ईश्वर ही इस सृष्टि का कर्त्ता है। वह पूर्ण, मुक्त, सनातन और सर्वात्मा है। यही सृष्टा, पालनकर्त्ता और संहारकर्त्ता है। हाँ, ईश्वर परम् पुरूष है और ब्रह्म निरपेक्ष सत्ता है। ईश्वर प्रत्यक्ष है और ब्रह्म अप्रत्यक्ष।

ईश्वर इस संसार का निम्रण कैसे करते हैं, महर्षि अरविन्द ने अपने विकासवाद के आधार पर इसकी व्याख्या निम्न प्रकार से की है– विकास की दो दशाएँ हैं– आरोही और अवरोही। महर्षि अरविन्द के अनुसार दोनों क्रम सात सोपानों द्वारा निश्चित होता है। जब परम् सत्ता पार्थिव सत्ता में आती है, तो यह संसार प्रकट होता है। यह क्रम अवरोही क्रम है। इसे निम्न प्रकार से भी जान सकते हैं– 1. सत्, 2. चित्, 3. आनन्द, 4. अतिमानस, 5. मानस, 6. प्राण, 7. द्रव्य।

आरोही क्रम अवरोही क्रम के विपरीत होता है अर्थात जब पार्थिक सत्ता परम सत्ता की ओर आरोहण करती हैं, तो प्रकृति प्रकट होती है। इसे निम्न प्रकार से जान सकते हैं– द्रव्य, प्राण, मानस, अतिमानस, आनन्द, चित् एवं सत्।

सृष्टि

विकास के दोनों दशा को आरोही और अवरोही क्रमों के द्वारा सृष्टि का निर्माण चलता रहता है। ईश्वर को सच्चिदानन्द स्वीकार करते हुए देवयोगी यह मानते हैं कि विश्व सच्चिदानन्द की लीला है। वह परम् तत्व अनेक में एक की अनुभूति के लिए इस सृष्टि को बिगाड़ भी देता है और एक में अनेक की अनुभूति के लिए उसे पुनः बना भी देता है। यह सम्पूर्ण क्रिया वह परम् शक्ति 'आनन्द' के लिए किया करती है।

राजनैतिक कार्य

अरविन्द अपनी मातृभूमि की माता के समान मानते थे और इस सम्बन्ध में भारत वासियों के क्या कर्तव्य हैं वे उन्हीं के शब्दों में–जबकि अन्य लोग स्वदेशो एक जड़ पदार्थ, कुछ मैदान, खेत, वन, पर्वत, नदी मात्र ही समझते हैं मैं स्वेदश को माँ मानता हूँ। माँ के रूप में उनकी भक्ति करता हूँ। पूजा करता हूँ माँ की छाती पर बैठकर यदि कोई राक्षस रक्त पात करने के लिए उद्यत हो तो भला पुत्र क्या करता? निश्चित होकर भोजन करने, स्त्री–पुरूष के साथ आमोद–प्रमोद करने बैठ जाता या माँ का उद्धार करने के लिए दौड़ पड़ता है।

श्री अरविन्द के रजनीतिक विचारों का अध्ययन तीन अवस्थाओं के ध्यान में रखकर करना होगा, उन्होंने क्रमशः बड़ौदा में, बंगाल के राष्ट्रवादी आन्दोलन में और पाण्डिचेरी में बितायी।

1893 में जब श्री अरविन्द भारत वापस लौटे और बड़ौदा नरेश सयाजीराव गायकवाड़ के यहाँ नौकरी करते रहे पहले स्टाम्प विभाग, रेवेन्यू विभाग में रहेफिर बड़ौदा कालेज के अध्यापक बने कालेज में थे पहले फ्रेन्च के प्रोफेसर बने तत्पश्चात अंग्रेजी के प्रोफेसर तथा बाद में उपप्रधानाचार्य के पद पर कार्य किया। इस अवधि में उन्होंने संस्कृत तथा अन्य भारतीय भाषाओं का गहन अध्ययन किया। हिन्दू धर्म भारती संस्कृति और दर्शन का भी उन्होंने गम्भीर अध्ययन किया 1901 में उनका विवाह हुआ तथा 1905 में बंगाल विभाजन के विरोध स्वरूप नौकरी से त्यागपत्र दे दिया और कलकत्ता लौट आयें। अरविन्द मातृभूमि के स्वतंत्रता संग्राम में प्रवेश करने के सुअवसर की प्रतीक्षा में थे और 1905 मं बंगाल विभाजन ने यह अवसर प्रस्तुत कर दिया कर्जन के इस कदम से न केवल बंगाल में अपितु महाराष्ट्र पंजाब आदि भारत के अन्य भागों में भी जहाँ राष्ट्रीय चेतना अच्छी तरह विकसित हो चुकी थी राष्ट्रीयता की प्रबल लहर दौड़ा दी। श्री अरविन्द तेजी से राजनीतिकता से विविधस में कूद पड़ेद्य उन्होनं पाँच वर्ष की अल्पावधि में ही भारत की राजनीतिक रूपरेखा को बदल दिया और घटनाओं की अटूट श्रृंखला चालू कर दी जिसके परिणाम स्वरूप चार दशकों के भीतर–भीतर भारत एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में उभर कर आया। 1906 में बड़ौदा कालेज से वर्ष भर की अवेतन छुट्टी लेकर श्री अरविन्द कलकत्ता जा पहुँचे और बंगाल में राष्ट्रीय आन्दोलन का संगठन करने के काम में जुट गये। अरविन्द ने उदार वादी नेताओं की याचना पद्यति पर कठोर प्रहार किया उन्होंने कहा कि याचना करना अपील करना, प्रर्थना करना आदि साधन न केवल अपर्याप्त है बल्कि भारतीयों के आत्म सम्मान के विरूद्ध भी है। उन्होंने कांग्रेस को ऐसा मार्ग और पद्यति अपनाने की सलाह दी जिससे

भारत की जनगण की निद्रा भंग हो जाए और वह सचेत तथा सक्रिय बन उठे। श्री अरविन्द ने जन साधारण और श्रम जीवी वर्ग के महत्व को समझा उन्होंने बताया कि राष्ट्र की शक्ति का सच्चा आधार श्रम जीवी वर्ग ही है। श्रमजीवी वर्ग आज चेतनाहीन और गतिहीन है लेकिन उसमें महान शक्ति की प्रन्तसंम्भावनाएँ छिपी पड़ी हैं जो कोई इस वर्ग को समझने तथा उसकी शक्ति को जाग्रत करने में सफल रहेगा वही भविष्य का स्वामी होगा।[1] वारीन्द्र घोष के युगान्तर में अनेक लेख लिखे विपिन चन्द्र पाल के बन्देमातरम् में सम्मिलित हुए और 1909 में कर्मयोगिनी नामक एक साप्ताहिक पत्र प्रारम्भ किया इन पत्रों के प्रभाव से सम्पूर्ण देश में इनका प्रभाव माने जाने लगा तथा वे अखिल भारतीय स्तर के नेता बन गये। वे गरम दल के उस समय अगुवा थे। 1906 में सूरत कांग्रेस अधिवेशन के समय गरम दल की ही विजय हुई थी। मुजफ्फरपुर के जिला जज श्री किंगफोर्ड की गाड़ी पर 10 अप्रैल 1908 को एक बम फेका गया जिसमें किंग फोर्ड नहीं थे पर प्रिंगल कैनेडी की पत्नी और पुत्री की मृत्यु हो गयी 4 मई 1908 को श्री अरविन्द को गिरफ्तार कर लिया गया और अलीपुर जेल में रखा गया। 13 अप्रैल 1909 को देश बन्धु चितरंजनदास के अकाट्य तर्कों व कुशल पैरवी के कारण उन्हें जेल से मुक्त करा दिया गया अब श्री अरविन्द सक्रिय राजनीति से अलग हो गये यह विरक्ति अचानक नहीं हुई 1903 में उनकी भेंट स्वामी ब्रह्मानन्द से हो चुकी थी और वे आध्यात्मिक साधना के मार्ग में धीरे–धीरे बढ़ रहे थे। 1907 में उनकी भेंट विष्णुभाष्कर लेले नामक एक मराठी योगी से हुई जिसके साथ तीन दिन तक उन्होंने अपना सारा राजनैतिक कार्य स्थगित करके साधना की। इस साधना से उन्हें कुछ आध्यात्मिक अनुभव हुए।[2] और आध्यात्म में लीन हो गये।

सामाजिक कार्य

श्री अरविन्द भारतीय समाज में व्याप्त विभिन्न कुरीतियों से भली–भाँति परिचित थे वे जानते थे कि जब तक इन कुरीतियों का विनाश नहीं किया जायेगा तब तक भारतवासियों में राष्ट्रीय चेतना उत्पन्न नहीं होगी। बाल विवाह, का उन्होंने विरोध किया तथा विधवा पुर्नविवाह का समर्थन किया। भारतीय नारी की दयनीय स्थिति को उन्होंने अपने आँखों के सामने देखा था। अतः भारतीय नारी के पर्दाप्रथा का विरोध किया तथा स्त्रियों को सामाजिक क्षेत्र में कार्य करने की अनुमति दी।

श्री अरविन्द के दासता की बेड़ियों में जकड़ी संस्कृत भारत माँ को स्वाधीन कराने की माँग की उन्होंने कहा कि माँ को बेड़ियों से मुक्त करने के लिए हर सम्भव उपाय करना बेटों का कर्तव्य है। माँ की स्वतंत्रता के प्रसंग में समझौते या सौदेबाजी की कोई बात नहीं उठती। हमारा केवल एक ही लक्ष्य हो सकता है और वह है 'पूर्ण और अखण्ड स्वतंत्रता' राष्ट्रीय मुक्ति का प्रयत्न एक परम पवित्र यज्ञ है जिस में बहिस्कार, स्वदेशी, राष्ट्रीय शिक्षा और अन्य कार्य छोटी बड़ी आहूतियां हैं इस यज्ञ का सुफल स्वतंत्रता है। जिसे हम देवी भारत माँ को अर्पित करेंगे। अरविन्द ने कहा कि किसी कमी के कारण रोका, हमारी आस्था डगमगा गयी तो माता सन्तुष्ट नहीं होगी और प्रत्यक्ष दर्शन नहीं होगी इस प्रकार श्री अरविन्द ने सामाजिक चेतना देश वासियों में जगायी।[3]

शिक्षा का अर्थ

शिक्षा को अरविन्द ने नवीन दृष्टिकोण से देखा है। उन्होंने रूसों की भाँति घोषित किया है कि सूचनाओं का संग्रह मात्र शिक्षा नहीं है। "सूचनाएँ ज्ञान की नीव नहीं हो सकती वे अधिक से अधिक वह सामग्री हो जाती है जिसके द्वारा जानने वाला अपने ज्ञान की वृद्धि कर सके अथवा वे वह बिन्दु है जहाँ से प्रारम्भ किया जाय।" वह शिक्षा जो अपने को ज्ञान देने तक सीमित रखती है शिक्षा नहीं है इस प्रकार उन्होंने शिक्षा को एक व्यापक दृष्टि से अपनाया है यह कहा जाता है कि प्राचीन ऋषि परम्परा में होने के कारण श्री अरविन्द बुद्धिवादी और ज्ञेयवादी थे अतएव उनका विचार था कि शिक्षा बौद्धिक इमारत बनाने की नीव होती है। जिसके ऊँपर विकास का दृढ़ भवन तैयार होता है बौद्धिक विकास में केवल तथ्य न ही एक से होते हैं वरन् बुद्धि उनका प्रयोग कर सके तथी विकास सार्थक होता है। शिक्षा इस प्रकार वह साधन है जिससे बालक का प्रौढ़ सभी नई सामग्री एकत्र करें और उसक सामग्री का जो उनके अधिकार में है कुशलता से प्रयोग करे और वे जिस भवन की अवस्था होगी जो अन्तःकरण विवेक ज्ञान तथा रचना शक्ति की बराबर बढ़ती हुई क्रियाओं का भार वहन कर सके।"[4]

निष्कर्ष

श्री अरविन्द द्वारा शिक्षा का अर्थ प्रगतिशील आत्मा को अपने भीतर निहित तत्वों की सहायता देना ही शिक्षा है। तथा उन्होंने बताया है कि शिक्षा का अर्थ ज्ञान चरित्र एवं संस्कृति की जागृति करती हैं। जिससे बालक अपना विकास कर सकें विभिन्न विद्वानों ने शिक्षा के इसी रूची की व्याख्या की है गाँधी के द्वारा शिक्षा का अर्थ मन और शरीर और आत्मा इन तीनों पर बल दिया गया है।

प्लेटो के अनुसार शिक्षा का कार्य मनुष्य के शरीर और आत्मा को पूर्णता प्रदान करना जिसके कि योग्य है।

इस प्रकार सभी लोगों ने एक ही तत्व वह तत्व है प्रगति शक्ति आत्मा के भीतर निहित तत्वों की सहायता देना। इस प्रकार इसे कहा जा सकता है कि सभी शिक्षा विदों ने मनुष्य के अर्न्तनिहित शक्तियों के विकास पर बल दिया है।

व्यापक अर्थ में शिक्षा किसी समाज में चलने वाली शोद्देश्यों सामाजिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा मनुष्य की जन्म जात शक्तियों का विकास उसके ज्ञान एवं कला कौशल में वृद्धि एवं व्यवहार परिवर्तन किया जाता है इस प्रकार उसे सभ्य सुसंस्कृत एवं योग्य नागरिक बनाया जाता है जिसके द्वारा व्यक्ति एवं समाज दोनों निरन्तर विकास करते हैं।

अतः अरविन्द ने भी शिक्षा के विकास में व्यक्ति, राष्ट्र तथा मानवता माना है जिसके द्वारा व्यक्ति तथा समाज का विकास हो सकता है।

शिक्षा के उद्देश्य के सन्दर्भ में श्री अरविन्द ने छात्रों को शरीर, मस्तिष्क तथा आत्म का सर्वांगीण विकास करना है ताकि उनमें निहित दैवी सत्य को प्राप्त करने के लिए उन्हें उपकरण के रूप में प्रयुक्त कर सके। शिक्षा का उद्देश्य छात्रों को स्वयं के बारे में समग्र विकास करने में सहायता प्रदान करना है ताकि अपने आपको विश्व का अंग समझ सके।

स्वामी विवेकानन्द ने शिक्षा का अर्थ उद्देश्य शारीरिक विकास, मानसिक एवं बौद्धिक विकास चारित्रिक नैतिक धार्मिक विकास समाज सेवा राष्ट्रीय एकता और विश्वबन्धुत्व का विकास व्यवसायिक विकास तथा आध्यात्मिक विकास पर बल दिया है।

अतः श्री अरविन्द द्वारा शिक्षा के उद्देश्य जो निर्धारित किये गये हैं उनमें काफी समानता है सभी शिक्षा विदों ने मनुष्य के सर्वांगीण विकास पर बल दिया जिसकें द्वारा मनुष्य अपना तथा राष्ट्र के विकास में योगदान दे सकता है।

जितने भी शिक्षा शास्त्रियों ने शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण किया है वे श्री अरविन्द के शिक्षा उद्देश्य से गुजरते हुए पाते हैं अन्तःकरण और आत्मा का विकास ज्ञानेन्द्रियों का प्रशिक्षण मानसिक विकास नैतिक विकास तथा आध्यात्मिक विकास पर बल दिया गया है। इस प्रकार करीब सभी शिक्षा शास्त्रियों द्वारा इन्हीं तत्वों पर बल दिया है शिक्षा के उद्देश्यों को उतनी ही वर्तमान समय में आवश्यकता है जितनी श्री अरविन्द के समय में थी अतः उनके द्वारा प्रतिपादित शिक्षा के अर्थ तथा उद्देश्य पर व्यक्तित्व चले तो निश्चित ही वह अपना स्थान विश्व में पुनः स्थापित कर सकता है। साथ ही साथ व्यक्ति को व्यवसायिक शिक्षा का भी प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

संदर्भ सूची

1. डॉ. अमरेश्वर अवस्थी– आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन। रिशर्च पब्लिकेशन नई दिल्ली 1997, पृ. 418
2. राम सकल पाण्डेय –विश्व के श्रेष्ठ शिक्षाशास्त्री, पृष्ठभूमि–25 विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 1996, पृ. 281
3. डॉ. अमरेश्वर अवस्थी– आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन, रिशर्च पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1997, पृ. 422
4. द ब्रेन आफ इण्डिया – श्री अरविन्द